Bodhi-Path Year 2020 July Issue Volume 19 Page No 71-78

निर्वाण का स्वरूप

(स्थविरवाद के विशेष संदर्भ में)

पिंकु कुमार

शोध छात्र, पालि विभाग
नव नालन्दा महाविहार, (मानित विश्वविद्यालय)
नालन्दा– 803111, बिहार
Email:-pinkukmar88@gmail.com

बौद्ध परम्परा में मनुष्य के जीवन का परम लक्ष्य निर्वाण की प्राप्ति है। बुद्ध ने इसे धर्म और विनय की एकमात्र रस और ब्रह्मचरियवास का सर्वोत्कृष्ट फल बतलाया है। यह सर्वमल विरहित अत्यन्त परिशुद्ध अवस्था का नाम है, जिसके अधिगम से जाति–जरा–समन्वित भवचक्र सदा के लिए भग्न हो जाता है तथा लोकोत्तर सुख की प्राप्ति होती है। निर्वाण को महासमुद्र से उपमित किया गया है। जिस प्रकार महासमुद्र का केवल एक रस है, लवण रस; उसी प्रकार बुद्ध के द्वारा प्रवेदित धर्म–विनय का भी केवल एक रस है वह है– विमुक्तिरस अर्थात् निर्वाण की प्राप्ति।

स्थविरवादी बौद्ध वाङ्मय में अपना अपूर्व स्थान रखता है और उसका अपना महत्त्व है। बुद्ध ने कठोर तपश्चरण और आध्यात्मिक साधना के अनन्तर दो परमार्थ सत्यों का अधिगम किया जिसमें प्रथम प्रतीत्यसमुत्पाद और दूसरा निर्वाण। ये दोनों परमार्थ सत्य अत्यन्त दुर्बोध, अतर्क्य और दुर्दश थे। बौद्ध वाङ्मय में जो अध्यात्मिक साधना विहित है उस साधना के परिणामस्वरूप ही योगावचर को निर्वाण का अधिगम होता है।

निर्वाण का स्वरूप

बुद्ध ने निर्वाण को परम् सुख पद, अमृत पद, अच्युत पद, शिव पद, अनुत्तरयोग क्षेम, परम शान्ति की अवस्था सुरक्षित द्वीप आदि कहा है। निर्वाण भवप्रपंचोपशम है। सांसारिकता तथा रागात्मिक वृत्ति से उपरति एवं अस्मिता का सर्वथा विसर्जन ही निर्वाण है। जो साधक अपनी उत्कृष्ट तपोसाधना के बल से निर्वाण को प्राप्त कर लेता है उसके सभी बन्धन छूट जाते हैं तथा भव–स्त्रोत बन्द हो जाता है एवं आवागमन की श्रृंखला निराकृत हो जाती है।

निर्वाण को परमसुख की भी संज्ञा दी गयी है। यह दुःख–विमुक्ति को परामोत्तम अवस्था है जो निर्वाण सुख की परिज्ञापका है। निर्वाण अमानुषी रति है, जो धर्म का सम्यक् दर्शन करने प्रोद्भूत होती है। वह निर्विषय मन का आनन्द है। ऐसा अपूर्व, सुख है जो आलम्बन की अपेक्षा से सर्वथा रहित एवं अतीन्द्रिय है। निर्वाण परम शान्तावस्था है, इसमें परम उपशान्ति की उपलब्धि होती है।[1] सुत्तनिपात के मेत्तसुत्त में निर्वाण को ''शान्तपद'' कहा गया है।

निर्वाण की व्याख्या अमृत पद के रूप में भी किया गया है। निर्वाण आत्यन्तिक दुःख विमुक्ति की परमावस्था है। चार स्मृति–प्रस्थानों की भावना, स्वाद–त्याग, वैराग्य, अनित्य, दुःख तथा अनात्म इन सात वस्तुओं की अभिज्ञा को अमृत की ओर ले जाने वाला मार्ग कहा है।[2] पालि त्रिपिटक में अनेक बार निर्वाण को अमृत पद कहा गया है, जो बड़ा सार्थक है। ''मैनें अमृत को पा लिया है।'' इन शब्दों में बुद्ध ने अपनी सत्य प्राप्ति की सूचना सर्वप्रथम संसार को दी थी।[3] बुद्ध ने अमृत की ओर ले जाने वाले मार्ग के रूप में मध्यम मार्ग (आर्य अष्टांगिक मार्ग) का उपदेश दिया।

बुद्ध ने इस लोक को कारण कहा है। इसमें कहाँ त्राण है, कहाँ क्षेम है, इसकी खोज उन्होंने की थी। उन्होंने कहा है, ''धीर पुरूष निर्वाण में प्रवेश करते हैं जो अद्वितीय योगक्षेम हैं।[4] धीर नामक भिक्षुणी को उपदेश देते हुए बुद्ध कहते हैं कि ''धीरे! तू उस निर्वाण की आराधना कर, जो अद्वितीय योगक्षेम है। इसी प्रकार एक दूसरी भिक्षुणी को निर्वाण–साधना में अग्रसर होने के लिए उत्साहित करते हुए शास्ता ने कहा था, योगक्षेम की प्राप्ति के लिए तू कुशल धर्मों की वृद्धि कर।

अमृत और शान्ति पद कहने के साथ–साथ बुद्ध ने निर्वाण को अच्युत पद भी कहा है। ***''छन्द रागविरतो सो भिक्खु पच्चंगा अमतां सन्तिं निब्बानंपदमच्चुतं''***[5]। इसका अर्थ यह है कि इच्छा और राग से विरत प्रज्ञावान भिक्षु अमृत, शान्ति अच्युतपद निर्वाण को प्राप्त करता है। इसी का साक्ष्य देते हुए एक साधक भिक्षु ने कहा है मैंने अच्युत पद में प्रवेश किया है। सकुला नामक भिक्षुणी ने भी स्वयंवेद्य अनुभव के आधार पर कहा ''मैंने निर्मल धर्म निर्वाण को देखा है, जो अच्युत पद है।[6]

निर्वाण की व्युत्पत्ति

निर्वाण की प्राप्ति से संसार के सारे दुःखों से मुक्ति मिलती है। निर्वाण या निब्बान शब्द स्वयं तृष्णा से रहित अवस्था का द्योतक है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'निर्वाण' शब्द दो पदों से निष्पन्न है; यथा नि+वान। 'नि' उपसर्ग है, यह निषेध या निरोध अर्थ का द्योतक है। 'वान' तृष्णा को कहते हैं। अतः तृष्णा का निरोध ही निर्वाण है– ***''तण्हाय विप्पहाने निब्बानं इति वुच्चति।''***[7]तृष्णा को मनुष्य के दुःख का प्रमुख कारण माना गया है। तृष्णा के कारण ही मनुष्य कुशल–अकुशल कर्मों को करता है तथा उसके तद्रूप विपाक के अनुरूप विभिन्न गति योनियों में संसरण करते हुए दुःख का अनुभव करता है। इसलिए तृष्णा को दुःख का मूल कारण बतलाया गया है। बुद्ध ने कहा है– ***'तण्हाय जायती सोको, तण्हाय जायती भयं।***[8]

निर्वाण के कई प्रकार से व्युत्पत्ति परक अर्थ किया गया है। यह शब्द निः+वान दो पदों से बना है। यहाँ निः का अर्थ निषेधात्मक है और वान का अर्थ जलना है, इस प्रकार निर्वाण का अर्थ नही जलना या बुझ जाना है। सुत्तनिपात में कहा गया है कि– ***''निब्बन्ति धीरा यथायं पदीपो'***[9] अर्थात् ज्ञानी पुरूष प्रदीप की तरह बुझ जाते हैं। प्रदीप की तरह बुझना ही निर्वाण की प्राप्ति करना है। हम जानते हैं कि प्रदीप तभी तक जल सकता है जब तक उसमें तेल है। उसी तरह मनुष्य इस भव–चक्र में तब तक आता रहता है जब तक उसमें तृष्णा शेष है। पुनः निब्बान शब्द की व्युत्पत्ति नि+वा के योग के रूप में की गई है ''नि'' का अर्थ नहीं तथा ''वा'' का अर्थ झोंका है।[10] जिस प्रकार हवा के झोंके उठते रहते हैं और उठकर जीवन को अशान्त करते हैं उसी तरह तृष्णा के झोंके उठकर जीवन को अशान्त करते हैं। निब्बान का अर्थ झोंके का उपशम या अन्त भी किया जा सकता है। उदान में कहा गया है कि जिस प्रकार लोहे के घन की चोट पड़ने पर जो चिनगारियां उठती है वे तुरन्त ही समाप्त हो जाती है उसी तरह कामतृष्णा, भवतृष्णा और विभवतृष्णा से मुक्त व्यक्ति निर्वाण प्राप्त कर लेता है और कहाँ चला जाता है यह कहना कठिन है।

निब्बान शब्द की व्युत्पत्ति दुसरे प्रकार से भी की जा सकती है। निर्वाण नि+वान दो पदों के मेल से बनता है। ''नि'' उपसर्ग का अर्थ यहाँ निषेधात्मक है और ''वान'' शब्द का

अर्थ संसार–वासना, गहनवन इत्यादि कहा गया है। यह संसार क्या है ? संसार पुनः पुनः जन्म लेना तथा मृत्यु को प्राप्त करना है। वासना का अर्थ कुशल तथा अकुशल कर्मों से प्राप्त संस्कार तथा विज्ञान से है और गहनवन पाँचों स्कन्ध हैं। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान, ये पाँचों स्कन्ध ही हमारे जीवन में गहनवन की रचना करते हैं, इसलिए निर्वाण का अर्थ संसार वासना तथा गहनवन से छुटकारा है।

आचार्य बुद्धघोष ने निर्वाण शब्द का प्रयोग सभी मलों से छुटकारा पाकर अत्यन्त परिशुद्ध होने के अर्थ में किया है। *"सब्बलं विरहितं अच्चंतं परिसुद्धं निब्बानं"*[11]। सभी मलों से विरहित होने पर ही हमें आध्यात्मिक शान्ति मिल सकती है। जब तक हमारे अन्दर मल शेष है तब तक हम शान्ति लाभ नहीं कर सकते हैं।

मिलिन्द प्रश्न में नागसेन ने निर्वाण के विषय में बड़ी सूक्ष्म विवेचना की है; उनका स्पष्ट कथन है कि निरोध हो जाना ही निर्वाण है।[12] संसार के सभी अज्ञानी जीव इन्द्रियों और विषयों के उपभोग में लगे रहने के कारण नाना प्रकार के दुःख उठाते हैं, परन्तु ज्ञानी आर्य श्रावक इन्द्रियों और विषयों के उपभोग में कभी नहीं लगा रहता है और न उससे आनन्द ही लेता है। फलतः उसकी तृष्णा निरोध हो जाता है। तृष्णा निरोध के साथ उपादान का तथा भव का निरोध उत्पन्न होता है। पुनर्जन्म के बन्द होते ही सभी दुःख रूक जाते हैं। इस प्रकार तृष्णादिक क्लेशों का निरोध हो जाना ही निर्वाण है।

भगवान बुद्ध निर्वाण को एक सुन्दर उपमा के द्वारा समझाते हुए कहते हैं कि– मनुष्य के शरीर को एक राजा का नगर बताया है, जिसके छः इन्द्रिय–आयतन छः दरवाजों के समान है। इस नगर के द्वाररक्षक स्मृति और राजा मन है। इस मन–रूपी राजा के पास शमथ और विपश्यना रूपी दो सन्देशवाहक आते हैं जो सत्य का सन्देश लाते हैं। जिस मार्ग से ये संदेशवाहक आते हैं वह आर्य अष्टांगिक मार्ग है और सत्य के जिस संदेश को वे लाते हैं, वह है निर्वाण और उसका मार्ग हैं आर्य अष्टांगिक मार्ग जो निर्वाण–रूपी अमृत की प्राप्ति का उपाय है।[13] निर्वाण के अनुरूप मार्ग है और मार्ग के अनुरूप निवार्ण है। साधन और साध्य में एकरूपता है। जिस प्रकार गंगा की धारा यमुना से मिलती है और मिलकर दोनों एक हो

जाती है, उसी प्रकार निर्वाणगामिणी प्रतिपदा निर्वाण के साथ मेल खाती है और मिलकर एक हो जाती है।

निर्वाण का महत्त्व

निर्वाण का उपदेश बुद्ध ने उस शीतल सत्य के रूप में दिया था, जो सम्पूर्ण साधना का आश्रय है, परन्तु स्वयं जिसके आश्रय के सम्बन्ध में कोई उत्तर नहीं दिया जाता सकता है। निर्वाण अन्तिम सत्य है। उसके आगे 'नेति–नेति' है। अर्थात् जो नेति–नेति उपनिषद् दर्शन में ब्रह्म के अधिष्ठान के सम्बन्ध में होती है, वही बात बौद्ध दर्शन में निर्वाण के सम्बन्ध में भी है। ''भिक्खुओं! चक्खु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा और काय का आश्रय मन है। मन को योनिशः मनसिकार, मनसिकार का सम्यक् स्मृति है। विमुक्ति का आश्रय निर्वाण है, परन्तु यदि तुम पूछो कि निर्वाण का आश्रय क्या है, तो यह एक अतिप्रश्न है, जिसका उत्तर नहीं दिया जा सकता। यह ब्रह्मचर्य का जीवन निर्वाण में प्रवेश के लिए है निर्वाण तक जाने के लिए है, निर्वाण में परिपूर्णता प्राप्त करने के लिए है।[14]

बुद्ध ने राध को निर्वाण का उपदेश दिया। ''राध! यह सम्यक् दृष्टि निर्वेद के लिए है। निर्वेद विराग के लिए है, विराग विमुक्ति के लिए है और विमुक्ति निर्वाण के लिए है। यदि तुम पूछो कि निर्वाण किसके लिए है तो प्रश्न का अतिक्रमण करते हो और उसका उत्तर नहीं दिया जा सकता। राध! ब्रह्मचर्य का जीवन निर्वाण में प्रवेश के लिए है।[15] इसी प्रकार जब विशाखा ने भिक्षुणी धम्मदिन्ना से पूछा था, ''आर्ये! निर्वाण का प्रतिभाग क्या है ? तो उसने यही उत्तर दिया था। ''आवुस विशाखा! तुम प्रश्न का अतिक्रमण कर गई। प्रश्नों की सीमा को पकड़ कर नहीं रख सकी। आवुसा विशाखा! ब्रह्मचर्य निर्वाण–पर्यन्त है, निर्वाण–परायण है, निर्वान–पर्यवसान है।[16]

नागसेन की सम्मति में निर्वाण के बाद व्यक्तित्व का सर्वथा लोप हो जाता है, जिस प्रकार जलती हुई आग की लपटें बुझ जाने पर दिखलाई नही जा सकती है, उसी प्रकार निर्वाण प्राप्त हो जाने के बाद वह व्यक्ति दिखलाई नहीं जा सकती, क्योंकि उसके व्यक्तित्व को बनाये रखने के लिए कुछ शेष नहीं रह जाता है।[17] जिस प्रकार कोई भी मनुष्य अपनी

प्राकृतिक शक्ति के बल पर हिमालय तक जा सकता है, परन्तु वह लाखों कोशिश करे वह हिमालय को इस स्थान पर नहीं ला सकता। ठीक उसी प्रकार निर्वाण का साक्षात्कार करने का मार्ग बतलाया जा सकता है, परन्तु उसके उत्पाद हेतु का कोई भी नहीं दिखला सकता। इसका कारण यह है कि निर्वाण निर्गुण है, क्योंकि भूत, वर्त्तमान तथा भविष्य इन तीनों काल से परे है।

निर्वाण के प्रकार

विमुक्ति–रस की दृष्टि से निर्वाण एक प्रकार के होने पर भी कारण एवं अवस्था की दृष्टि से निर्वाण दो प्रकार के होते हैं। सउपादिसेस निब्बान एवं अनुपादिसेस निब्बान

सउपादिसेस निब्बान

सउपादिसेस में 'उपादि' का अर्थ है– पंचस्कंध। 'स' का अर्थ सहित या साथ है तथा 'सेस' का अर्थ है– विद्यमान। इसका अभिप्राय यह है कि शुद्ध रूप में पंचस्कंध के विद्यमान रहते हुए जिस निर्वाण की प्राप्ति होती है, उसे सउपादिसेस निर्वाण कहते हैं। इसे जीवित अवस्था में ही प्राप्त किया जा सकता है। इस अवस्था में किसी प्रकार की तृष्णा नहीं रह जाती है। मनुष्य परिशुद्ध हो विमुक्ति–सुख का अनुभवन करता है। इस अवस्था को व्यक्त करते हुए कहा गया है– ***''सब्बमलविरहितं, अच्चन्तपरिसुद्धं निब्बानं नाम''*** सउपादिसेस निर्वाण प्राप्त मनुष्य इस लोक में अनासक्त भाव से विद्यमान रहता है। कब तक विद्यमान रहता है ? जब तक कर्म के आधार पर प्राप्त नामरूप की स्थिति बनी रहती है। जब कर्म–फल समाप्त हो जाता है, तब मर जाता है, पर मरने के उपरान्त उसका पुनर्जन्म नहीं होता है।

अनुपादिसेस निर्वाण

अनुपादिसेस निर्वाण में 'अन' का अर्थ है– नहीं रहना, 'उपादि' का अर्थ है– पंचस्कंध तथा 'सेस' का अर्थ है– विद्यमाना रहना। इस प्रकार पंचस्कंध की अविद्यमानता में जिस निर्वाण का लाभ होता है, उसे अनुपादिसेस निर्वाण कहा जाता है। इस अवस्था में मनुष्य मृत्यु को प्राप्त

कर पुनः जन्म ग्रहण नहीं करता है। वह शाश्वत सुख की अनुभूति करता है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि–

अभेदिकायो निरोधि स"ञा, वेदना सीतिभविंसु सब्बा।

वूपसमिंसु संसारा, वि"ञाण अत्थमागमा ति।।

अर्थात् रूपकाय नष्ट हो गया, संज्ञा निरूद्ध हो गयी, वेदना शांत हो गयी, संस्कारों का उपशम हो गया तथा विज्ञान ने अर्थ को प्राप्त कर लिया।

निष्कर्ष

बौद्ध दर्शन के अनुसार निर्वाण योगावचर का परम लक्ष्य है। निर्वाण की व्युत्पत्ति का परक अर्थ सभी प्रकार के तृष्णाओं से छुटकारा पाना है। तृष्णा ही पंच स्कंधों को जन्म देती है और हमें बार–बार जन्म लेकर दुःख भोगना पड़ता है। इस दुःख से छुटकारा कैसे पाया जाय यह बौद्ध धर्म एवं अन्य दर्शनों के लिए अहम् प्रश्न रहा है। बुद्ध ने अपने उपदेशों में वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत कर यह प्रमाणित कर दिया है कि हमारे सभी प्रकार के दुःखों की जननी तृष्णा है। यदि हम तृष्णा से अपने को मुक्त कर सकें तो बहुत बड़ा सुख प्राप्त होगा। मनुष्य जब अपने जीवन के बारे में गहराई से सोचता है तो वह ऐसा सोचने को बाध्य हो जाता है कि दुःख से छुटकारा कैसे पाया जाय और हमारे जीवन का परम लक्ष्य क्या है? इस संदर्भ में निवार्ण की प्राप्ति ही अन्तिम लक्ष्य के रूप में सामने आती है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1. थेरीगाथा पृ0–15
2. अंगुतरनिकाय, भाग–4, पृ0–46
3. विनयपिटक, महावग्ग, पृ0–10
4. धम्मपद 2/3
5. थेरीगाथा, पृ0–211
6. सुत्तनिपात 5/8
7. अभिधर्मबिन्दु, हरिशंकर शुक्ल, पृ0–257
8. वही0 पृ0–257
9. बौद्ध दर्शन मीमांसा, बलदेव उपाध्याय, पृ0–127

10. पालि साहित्य का इतिहास, भरतसिंह उपाध्याय, पृ0—352
11. बौद्ध दर्शन मीमांसा, बलदेव उपाध्याय, पृ0—128
12. मिलिन्द प्रश्न पृ0—92
13. महागोविन्दसुत्त, दीघनिकाय 2/6
14. संयुत्तनिकाय, भाग—5, पृ0—218
15. संयुत्तनिकाय, भाग—2, पृ0—189
16. चुलवेदल्लसुत्त, मज्झिमनिकाय 1/5/4
17. मिलिन्द प्रश्न, पृ0—329